मैत्री के मेरे प्रयोग-1

आचार्य रजनीश ने मैत्री-भाव का बड़ा मार्मिक विश्लेषण किया है। जिस प्रकार जल से भरे बादल बरसने को आतुर रहते हैं, उसी प्रकार हमारे हृदय की करुणा स्वभावतः औरों के हृदयों को छूने के लिए उत्सुक रहती है। जैसे बादलों के बरसने पर धरती पर चहुँ ओर हरियाली छा जाती है, उसी प्रकार हमारे हृदय की करुणा परिवार और पड़ोस में संवेदना और मैत्री-भाव का संचार करती है। परन्तु, हमारी दैनिक व्यस्तताएँ कुछ ऐसी हैं कि हृदय की इस पुकार को हम नजरअंदाज कर बैठते हैं। हम रोज अगर पाँच मिनट भी दिल की इस संवेदना को महसूस करने और उसे प्रकट करने का समय निकाल पाएँ, तो अपनी अनेक समस्याओं को सुलझाने में स्वयं ही काफी हद तक सफल हो सकते हैं।

मुझे स्मरण आता है कि मैत्री के मेरे प्रयोग अनजाने में बचपन से ही आरम्भ हो गए थे। यह ईश्वर की असीम कृपा थी कि मुझे सदैव अपनी चीजें मिल-बाँट कर इस्तेमाल करने का शौक था, और जब भी मुझे ऐसा करने मौका मिलता था, मैं आनन्द-विभोर हो उठता। बहुत बार तो स्थिति कुछ ऐसी भी हो जाती थी कि इस उल्लास को अनुभव करने के लिए मैं मौके तलाशता रहता था। रोज 50-60 कंचे मैं जरूर जीतता, परन्तु मेरी खुशी का कारण यह जीत नहीं होती, बल्कि उसी शाम को जब मैं इनमें से 30-40 कंचे पड़ोस के छोटे बच्चों में बाँट देता, तब मुझे खुशी होती थी।

आगे चलकर इंजीनियरिंग कॉलेज में जब मैंने दाखिला लिया, तो मैत्री-भाव ने मुझे अनेक प्रदेशों से आए विद्यार्थियों के काफी करीब पहुँचाया। लगभग सभी खेलों की कॉलेज टीमों में मैं कैप्टन अथवा सदस्य था, जिसके कारण मेरा सम्पर्क-क्षेत्र सामान्य विद्यार्थियों से बहुत अधिक था। खेलों के प्रति मेरे शौक ने मेरे मैत्री-भाव को कई गुना बढ़ा दिया तथा मेरे कई परम हितैषी भी बन गए थे। इन मित्रों में से कुछ ऐसे भी थे, जो आज तक मेरे सम्पर्क में हैं तथा इनमें से कई मित्रों के साथ मिलकर मैत्री-भाव से समाज को आज हम जोड़ने के प्रयास में लगे हुए हैं।

'मैत्री के मेरे प्रयोग' शीर्षक से श्री निखिल की लेखमाला के अन्तर्गत 6 लेख धारावाहिक रूप से 'ऋचा ऋतम्भरा' में प्रकाशित हुए थे। ये ही लेख यहाँ प्रस्तुत हैं।

सिविल इंजीनियर बनने के पश्चात् जब मैंने दिल्ली शहर में नौकरी शुरू की, तो पाया कि जहाँ कहीं भी निर्माण-कार्य हो रहा है, वहाँ कार्यरत मज़दूरों के हित में सोचने वाला कोई भी नहीं है। हर कोई इसी होड़ में लगा हुआ है कि कैसे उनसे ज्यादा से ज्यादा काम, कम-से-कम मज़दूरी देकर निकाला जाए। मैंने पाया कि इस होड़ का आलम कुछ ऐसा होता था कि गर्भवती महिला मज़दूर एवं दूध पीते नवजात शिशु भी चैन की साँस नहीं ले पाते थे। एक बार मैंने देखा, दूध की भूख से तड़पता बच्चा और दूर कहीं पत्थर ढोती उसकी माँ— इस दृश्य ने मेरे दिल को झकझोर दिया। मैं इस बात से हैरान होता कि कम्पनी के आला अफसर जब भी निरीक्षण के लिए आते, उनकी नज़रें केवल सरिया और कंकरीट पर ही जाती थीं। माताओं और उनके नन्हें बच्चों के अस्तित्व के इस रोज़मर्रा के संघर्ष को न तो वह देख और समझ पाते थे और न ही उनके पास इतनी फुर्सत अथवा रुचि होती थी कि इन मज़दूरों के साथ कभी-कभी दो बातें भी कर लिया करें।

मैंने यह देखा कि स्कूल जाने लायक बच्चे दिन भर मिट्टी में खेलते रहते थे। लकड़ी की पतली टहनियों से वे मिट्टी में कुछ बनाने का प्रयास करते रहते, मानों यह कह रहे हों कि कोई उनकी इस दरिद्रता को समझे, महसूस करे। यह तो उनकी भावना की मेरी कल्पना ही थी, अन्यथा वे बच्चे तो मुझे ऐसे खेलते हुए उन्मुक्त दिखाई पड़ते थे, जैसे सभी बच्चे खेलते हैं। मज़दूर माताओं और बच्चों की इस स्थिति को देखकर मैंने अपने साथी इंजीनियरों से चन्दा इकट्ठा किया तथा सभी बच्चों के लिए एक बड़े वृक्ष के नीचे कक्षा की स्थापना की। चन्दे के पैसों से सब बच्चों के लिए स्लेट-चॉक एवं कॉपी-पेन्सिल इत्यादि का प्रबन्ध किया गया। बच्चों की यह अनोखी कक्षा नित्य मज़दूरों के भोजन के विश्राम के समय लगती थी। इस प्रयोग से सभी बच्चे उत्साह से झूम उठे। उनको अपनी रचना-शक्ति को अभिव्यक्त करने का आखिर एक मंच मिल गया था। साथ ही, उनके मजबूर मज़दूर माता-पिता मेरे पास आते और अपनी व्यथा सुनाते। उन सभी की एक ही इच्छा रहती— बड़े होकर उनके बच्चे उनकी तरह मज़दूर न बनें। अपनी तरफ से मैं उनको केवल तसल्ली ही दिला पाता, और यही कहता कि इन बच्चों को अच्छा इंसान बनाने की यह एक छोटी सी पहल ही है। बस, मेरा यह कहना होता, और उनके चेहरे मुरझा जाते।

मुझे ऐसा प्रतीत होता, मानों बचपन में उनके माता-पिता से भी किसी ने शायद यही बात कही हो। मन ही मन मैं भी यह जानता था कि इन बच्चों का भविष्य अपने माता-पिता से ही जुड़ा हुआ है। परन्तु मैत्री के इस प्रयोग को किए बगैर मेरा दिल भी नहीं माना। अन्ततोगत्वा मेरी धारणा सही साबित हुई। गाँव में फसल कटाई का समय आया, और सभी मज़दूर सपरिवार अपने-अपने गाँव वापस चले गए। बच्चे मुझसे कह गए कि अगले वर्ष जरूर लौटेंगे, और वृक्ष के तले हमारी वह कक्षा फिर से लगेगी। मैंने उनको भरी आँखों से विदा किया और मन ही मन ईश्वर से प्रार्थना की, कि जिस संस्कार का यहाँ बीजारोपण हुआ है, वह फले-फूले और वह इन मासूम बच्चों को सद्मार्ग पर चलने के लिए प्रेरित करें।

निर्माण-कार्य-स्थल के इस प्रयोग ने मुझे बड़ी गहराई तक प्रभावित किया। बचपन से अनायास चल रहे मैत्री-भाव के मेरे प्रयोग अब मुझे एक सुदृढ़ निष्कर्ष तक पहुँचा रहे थे। मुझे यह स्पष्ट हो गया था कि मैत्री की कोई भाषा नहीं होती है। मैत्री-भाव स्वयं एक सशक्त माध्यम है, एक जरिया है, हमें औरों के दिलों को छूने का, उनसे मधुर सम्बन्ध बनाने का, और हम पाएँगे कि जब भी हम इस भाव को प्रकट करेंगे, तो हमें सदैव सुख-शान्ति का ही अनुभव होगा। दिन-रात की तनाव भरी जिन्दगी में इस तरह के मैत्री के प्रयोगों के द्वारा हम न केवल इन तनावों से मुक्ति पा सकते हैं, वरन् अपने आस-पास के वातावरण को भी मनोरम बना सकते हैं।

इस अनोखे अनुभव ने मुझे बच्चों की तरफ खींचना शुरू कर दिया, और मुझे ऐसा लगा कि अब उनके बीच ही रहकर अपने जीवन के उद्देश्य मुझे पूरे करने हैं। नन्हें बच्चे मैत्री-भाव से तुरन्त प्रभावित होकर रचनात्मक हो जाते हैं। मैंने यह पाया कि उनकी इस रचनात्मकता को यदि एक नियोजित ढंग से व्यवस्थित किया जाए, तो हर बच्चे में स्वभावतः उपलब्ध उसका देवत्व न केवल भविष्य में सदैव सुरक्षित रह सकता है, बल्कि इससे उस बच्चे के सर्वांगीण विकास का रास्ता भी प्रशस्त किया जा सकता है। कुछ ऐसे ही विचारों को लेकर मैंने अपनी इंजीनियरिंग की नौकरी छोड़ने का फैसला किया और बस्ती के एक विद्यालय से जुड़ गया। मेरे इस निर्णय का मेरे परिवार-जनों ने पूर्ण समर्थन किया। शायद मैत्री के मेरे प्रयोगों से वे भी अप्रभावित नहीं रह पाए थे।

मैत्री के मेरे प्रयोग-2

छोटे बच्चों के साथ समय बिताना मुझे बहुत पसन्द आता है। जब भी बड़े उनकी संगत में होते हैं, वे अपनी सब परेशानियाँ कुछ समय के लिए भूल जाते हैं। बच्चे स्वाभाविक रूप से जीवन के हर पल को जीना चाहते हैं, और हर पल जीने में ही उनका जीवन है। जब बड़े उनके साथ होते हैं, तो वे भी हर पल जीवन जीने लग जाते हैं। छोटे-छोटे झगड़े, हल्की-फुल्की शैतानियाँ, शोर-हल्ला, हँसी-मजाक, एक-दूसरे की शिकायत इत्यादि कुछ ऐसी गतिविधियाँ हैं, जिनमें ये बच्चे डूबे रहते हैं। ऐसे माहौल में बड़े भी बच्चे बन जाते हैं और उनका बचपन लौट आता है। अगर बड़े ज़िन्दगी का हर पल इसी उत्साह और बेफिक्री से जी सकें तो वे अपनी तमाम परेशानियों का हल कुछ हद तक निकाल सकेंगे।

अपने जीवन को एक नया मोड़ देने के लिए मैंने अपनी इंजीनियरिंग की नौकरी छोड़कर एक स्कूल में पढ़ाने का फैसला लिया। छोटे बच्चों के साथ ज्यादा से ज्यादा समय बिताने के लिए उन्हें अपने प्रिय गणित और विज्ञान विषयों को पढ़ाना मैंने एक अच्छा माध्यम समझा। मेरी इच्छा थी कि मैं स्कूल में किसी छोटी कक्षा के बच्चों को पढ़ाऊँ, क्योंकि छोटी उम्र में बच्चे शीघ्र प्रभावित होते हैं और उनके व्यक्तित्व में वांछित परिवर्तन शीघ्र दिखाई देने लगते हैं।

गणित एक दार्शनिक विषय है। उसके माध्यम से बच्चों के दिमाग की गहराइयों तक पहुँचा जा सकता है और उनमें मौलिक एवं रचनात्मक परिवर्तन लाए जा सकते हैं। यह मेरी खुशनसीबी थी कि मुझे कक्षा सात के बच्चों को गणित पढ़ाने का अवसर मिला। बहुत से बच्चों के लिए गणित एक ऐसा शैतान है, जो सदैव उनके दिल और दिमाग पर हावी रहता है। इम्तिहान के समय यह शैतान विकराल रूप धारण कर लेता है और पीड़ित बच्चों और उनके माता-पिता को रात-दिन सताता है। मेरे लिए सबसे बड़ी चुनौती यह थी कि कैसे मैत्री के अपने प्रयोगों से मैं पहले तो इन बच्चों का दिल और भरोसा जीतूँ, और फिर हम अध्यापक और विद्यार्थी मिलकर कैसे इस शैतान का सामना करें और उस पर जीत हासिल करें।

अपने अभियान को शुरू करते हुए मैंने कक्षा के बच्चों को अनेक अध्ययन-समूहों में बाँटा। हर समूह का एक ग्रुप लीडर बनाया गया। यह वह बच्चा होता, जिसका गणित में सबसे ज्यादा रुझान था और जो अपना ज्ञान अन्य बच्चों के साथ बाँटने का इच्छुक था। यह सर्वविदित है कि ज्ञान, प्रेम और खुशी बाँटने से कभी घटते नहीं हैं, बढ़ते ही हैं। बच्चों को मैं पहले विषय के सिद्धान्त समझाता, विषय से सम्बन्धित रोज़मर्रा के जीवन से उदाहरण देता और फिर अन्त में सवालों का सिलसिला शुरू होता। यह मेरी कक्षा का सबसे रोमांचक दौर होता। गणित के अध्यापक का यह दायित्व होना चाहिए कि वह पढ़ाने के ऐसे तरीके अपनाए कि विद्यार्थी सवाल स्वयं सुलझाने के लिए प्रेरित एवं उत्साहित हों। सवाल को स्वयं हल करने का मज़ा ही कुछ और है। मेरा मानना है कि अध्यापक को हर प्रयास करना चाहिए कि विद्यार्थी इस हर्ष और उल्लास से वंचित न रह जाएँ। कुछ मौलिक सवाल ब्लैक बोर्ड पर हल करने के बाद मैं अलग-अलग अध्ययन-समूहों को अभ्यास के लिए कुछ-कुछ सवाल देता, और हर समूह को कक्षा में ही उन्हें हल करने का समय दिया जाता। हर बच्चे को छूट रहती कि वह किसी भी समय मुझसे अपनी परेशानी दूर करने के लिए सहायता ले सकता था। हर समूह अपने सवाल हल करके उन्हें ब्लैक बोर्ड पर बारी-बारी से अपने सदस्यों के माध्यम से सुलझाता। इस प्रकार, कक्षा के हर बच्चे को ब्लैक बोर्ड पर सवाल हल करने का अवसर प्राप्त होता। ब्लैक बोर्ड पर आकर सवाल हल करने की इस प्रक्रिया से मैंने पाया कि हर बच्चे में एक नया उत्साह उमड़ने लगा और इससे यह हुआ कि बच्चों में गणित के प्रति लगन एवं विश्वास बढ़ने लगा। अध्यापक जब सवाल खुद हल कर अपना कार्य पूर्ण कर लेते हैं, तब बच्चे आसानी का रास्ता अपनाते हुए उत्तर की नकल फटाफट कर लेते हैं। इस आदान-प्रदान का नतीजा यह होता है कि दोनों पक्ष सच्चाई से वंचित रह जाते हैं, और हार होती है गणित के प्रशिक्षण की। इस हार से जागता है गणित के प्रति रोष, और जन्म लेता है गणित का शैतान।

मेरी सदैव यही कोशिश होती कि हफ्ते में एक कक्षा में हम सभी मिलकर गणित के खेल खेलें। हमारा विषय होता— पढ़ाए गए अध्याय, और मकसद रहता— उनकी पुनरावृत्ति। अभ्यास कराए बगैर सिद्धान्तों को समझने

में परिपक्वता नहीं आती है और बच्चे इन्हें पूर्ण रूप से आत्मसात् नहीं कर पाते हैं। इस प्रकार की कक्षा के दौरान मैंने बच्चों में रचनात्मक प्रतिस्पर्धा का जागरण देखा। हारने वाला विद्यार्थी भी अन्त में सफल रहता— गणित के शैतान का सामाजिक बहिष्कार करने में। कॉपियाँ जाँचने के लिए मैं सबसे पहले ग्रुप लीडर की कॉपियाँ जाँचता। इन कॉपियों के आधार पर समूहों के बाकी सदस्य अपनी-अपनी कॉपियाँ स्वयं पेन्सिल से जाँचते और फिर मेरे पास जमा करते। इस प्रकार बच्चों में नकल करने की प्रवृत्ति भी घटने लगी, और ईमानदारी से अपना कार्य पूरा करने की क्षमता उनमें पनपने लगी। हर इम्तिहान के पश्चात् ग्रुप लीडर बदलते, और समूह के किसी दूसरे सदस्य को आगे आने का अवसर मिलता। हर बच्चे में यह विश्वास बढ़ने लगा कि वह भी औरों का मार्गदर्शन कर सकता है। उसमें क्षमता विद्यमान है, पर जरूरत केवल अवसर मिलने की और भरोसा दिलाने की है।

सभी समूहों की रचना इस ढंग से की गई थी कि सभी सदस्य आस-पास के मोहल्लों में रहने वाले हों। मैंने बच्चों को यह सलाह दी कि अगर तुम लोग मौज-मस्ती के लिए एक-दूसरे के घर जा सकते हो तो फिर गणित का अभ्यास करने के लिए क्यों नहीं जा सकते। इस प्रकार प्रारम्भ हुआ गणित के अभ्यास का नया दौर। प्रत्येक अध्ययन-समूह के सदस्य दो हफ्ते में एक बार, बारी-बारी से, एक-दूसरे के घर अपनी गणित की किताबें एवं टिफिन बॉक्स लेकर पहुँचते। गणित के इस अनोखे प्रयोग की जो बच्चा मेज़बानी करता, उसके माता-पिता भी इस कक्षा में शामिल रहते। मौका मिलते ही मैं भी इस प्रकार की कार्यशाला में शामिल हो जाता। कुछ समय बाद मैंने पाया कि बच्चों के माता-पिता का भी रुख गणित के प्रति बदलने लगा। बच्चे और उनके माता-पिता एक-दूसरे की भावनाओं से जुड़े रहते हैं, और मैंने पाया कि गणित के शैतान के विरुद्ध हमारी लड़ाई में एक गुट और शामिल हो गया।

मैत्री के इस अनोखे प्रयोग ने मुझे अनेक परिवारों के बहुत करीब पहुँचाया। जब समस्या एक प्रकार की होती है, तब सभी प्रभावित पक्षों को तालमेल के साथ आगे बढ़ना चाहिए। गणित एक ऐसा विषय है, जिससे बच्चों की तर्क-शक्ति का विकास होता है। यह क्षमता अगर हम बच्चों में कुछ ऐसे

ढंग से स्थापित करने का प्रयास करें कि गणित विषय मनोरंजक बन सके, और साथ ही, बच्चों में नैतिक मूल्यों का समावेश रोज़मर्रा के कामों को निपटाने के माध्यम से हो सके, तो बच्चों के सर्वांगीण विकास का पथ प्रशस्त हो जाएगा। इस प्रयोग की सफलता ने मुझे आश्वस्त किया कि अगर हम बच्चों को उपदेश देने के बजाय उदाहरण प्रस्तुत करके उन्हें रचनात्मक गतिविधियों की ओर प्रेरित करें तो हम ऐसे परिवारों का निर्माण कर सकेंगे, जो नैतिक मूल्यों को आत्मसात् किए होंगे। यही अनुभव और विचार आगे चलकर स्कूलों में 'समीर क्लब' के गठन का आधार बना। 'शिक्षा और पारिस्थितिकी पुनर्स्थापना एवं संरक्षण के अभियान' का अर्थ देने वाले जो अंग्रेजी शब्द बनेंगे, उन शब्दों के पहले अक्षर लेकर 'समीर' शब्द बना, इसी से 'समीर क्लब' नामकरण किया गया। □□

मैत्री के मेरे प्रयोग-3

स्कूल में पढ़ाते समय मैंने यह पाया कि हर बच्चे के पास करीब 30-40 मिनट खाली रहते हैं। जब किसी विषय के अध्यापक छुट्टी पर होते हैं, तो उस कक्षा में समय एक तरह से बरबाद हो जाता है। इसके अलावा, अनेक बच्चे सुबह जल्दी आ जाते हैं— उनके पास खाली समय रहता है। Hobby period, Games period इत्यादि में बच्चों के पास काफी समय निकल आता है। मैंने यह अनुमान लगाया कि हम रोज़ के इस 30 मिनट को जोड़ें तो यह हफ्ते में 3 घण्टे के बराबर बन जाते हैं, यानि कि महीने में 12 घंटे अथवा 2 कार्य-दिवस के बराबर बन जाते हैं, अर्थात् एक वर्ष में करीब एक महीने के बराबर कार्य-दिवस निकल आते हैं। इसका मतलब यह है कि हर साल को 13 महीनों का बनाया जा सकता है, अगर हम इस 30 मिनट रोज़ के समय का सदुपयोग कर सकें। यह समय तो आज बरबाद हो ही रहा है, इस खाली समय में शरारती बच्चे धौंस दिखाकर कमजोर बच्चों को लताड़ते हैं और उनमें बुरी आदतें पैदा करने की कोशिश भी करते हैं।

हर बच्चे का सम्पूर्ण विकास निर्भर करता है उसकी प्रकृति और उसे मिलने वाली परवरिश पर। उसकी प्राकृतिक बनावट पर किसी का कोई नियन्त्रण नहीं है, और मेरा यह मानना है कि प्रारम्भ में हर बच्चा ईश्वर का ही रूप होता है। हर बच्चे में वह दैवी गुण होते हैं, जो सही मार्गदर्शन एवं संरक्षण के द्वारा विकसित किए जा सकते हैं। यह कार्य करना होता है, बच्चे के माता-पिता एवं उसके स्कूल को। इसी परिप्रेक्ष्य में रोज़ के यह 30 मिनट मुझे बहुमूल्य लगने लगे। मैंने सोचा कि गणित और विज्ञान के माध्यम से जब हम हर बच्चे के भीतर पहुँचकर मौलिक परिवर्तन ला सकते हैं, तो क्यों न बच्चों के इस खाली समय में ही उनकी आवश्यक रचनात्मक गतिविधियाँ भी आयोजित की जाएँ, ताकि यह समय व्यर्थ न जाए। ऐसा करने के लिए मुझे 'समीर क्लब' की संकल्पना बहुत अनुकूल लगी।

समीर (अंग्रेजी में Social Action Movement for Education and Eco-Restoration-Sameer) की संकल्पना लगभग 20 वर्ष पूर्व अस्सी के

दशक में 'शिक्षा और पारिस्थितिकी पुनर्स्थापना एवं संरक्षण के अभियान' को दिशा देने के लिए लखनऊ में की गई थी, जिसके अन्तर्गत उत्तर प्रदेश के 150 से अधिक महाविद्यालयों में Eco-Restoration Nirman Clubs की स्थापना की गई थी। बाद में इन्हीं को Sameer Clubs नाम से जाना जाने लगा। बाद में जब मार्च 1992 में 'ऋचा' की स्थापना नई दिल्ली में की गई, तब इसे उसका आवश्यक अंग बनाया गया। इन प्रकल्पों से यह आशा की गई थी कि वे वर्तमान समय में हमारे समाज में उत्पन्न हो रही गम्भीर समस्याओं पर विचार करने के लिए छात्र-छात्राओं और संकाय सदस्यों के लिए एक मंच के रूप में कार्य करेंगे। इस व्यवस्था के अन्तर्गत सभी सदस्यों से यह अपेक्षा थी कि वे इसके लिए संकल्प लेकर कार्य करेंगे। ये संकल्प थे—

हम अपनी शक्ति और विवेक का इस्तेमाल करेंगे—

1. समाज में महिलाओं की स्थिति बेहतर बनाने हेतु 'नारी जागरण' के लिए।
2. पुरुषों को कम से कम समय में येन केन प्रकारेण धन अर्जित करने के जुनून से मुक्त करने हेतु 'नर के उदात्तीकरण' के लिए।
3. जनसंख्या नियंत्रण हेतु 'एक बच्चा प्रति परिवार' के मानदण्ड को स्थापित करने के लिए।
4. अधिकतम फोटो-सिंथेसिस से कार्बन डाई ऑक्साइड को समाहरित करने और जीवन-रक्षक ऑक्सीजन पैदा करने हेतु 'हरीतिमा संवर्धन' के लिए।
5. सभी प्रकार के व्यर्थ पदार्थों के द्वारा गृह-उद्योगों की स्थापना से 'रोज़गार सृजन' के लिए।

'समीर क्लब' की यह पुरानी संकल्पना यद्यपि महाविद्यालयों और प्रशिक्षण संस्थानों के लिए ही थी, मुझे इस मंच के सरल संस्करण की उपयोगिता विद्यालयों के लिए भी दिखाई पड़ी। मैंने यह कल्पना की कि हर विद्यालय में 'समीर क्लब' एक ऐसा अनोखा मंच बन सकता है, जहाँ हर बच्चे को खेल-खेल में मौका मिलेगा अपने भीतर टटोलने का। इस प्रयोग में मैंने कक्षा पाँच से लेकर कक्षा नौ तक के बच्चों को शामिल किया। इन कक्षाओं के

हर section के बच्चों को गतिविधिवार अनेक समितियों में बाँटा गया। उदाहरण के रूप में— Library & Academics Committee, Sports Committee, Campus Maintenance Committee, Health & Hygiene Committee इत्यादि। हर समिति के लक्ष्य एवं कार्य-प्रणाली को बच्चों के द्वारा ही विकसित किया गया, और फिर स्कूल के प्रधानाचार्य ने इनको अपनी रज़ामन्दी दी। हर समिति का एक agenda, और इस agenda को पूरा करने का plan of action बच्चों द्वारा तैयार किया गया और फिर उसे उनको विस्तार से समझाया भी गया। तीन महीने के लिए हर section में एक 'समीर क्लब' अध्यक्ष एवं सचिव भी सर्वसम्मति से नामित किए गए।

इन दोनों का काम था— अपनी कक्षा के अध्यापक के साथ गतिविधि-समिति का तालमेल बैठाना, ताकि सभी समितियों के सदस्य-बच्चों का मार्गदर्शन हो सके। अध्यक्ष एवं सचिव बनने का मौका बारी-बारी से ज़्यादा-से-ज़्यादा बच्चों को दिया जाता। वर्तमान का सचिव अगला अध्यक्ष बनता और वर्तमान का अध्यक्ष एक वरिष्ठ सदस्य का स्थान ग्रहण कर लेता। स्कूल में 'समीर क्लब' के Co-ordinator का दायित्व मैंने अपने हाथों में लिया। मेरी कोशिश रहती कि कैसे मैं 'समीर क्लब' के सभी sections के अध्यापकों से समन्वय स्थापित करूँ, ताकि पूरे स्कूल में यह प्रयोग एक नियोजित ढंग से आगे बढ़ सके।

हमारी कोशिश यह भी रहती कि हर बच्चे को कैसे एक से अधिक समितियों में भाग लेने का मौका मिले। इसका उद्देश्य था, हर बच्चे की नैष्ठिक योग्यता को उभारने का मौका देना। उदाहरण के रूप में, अगर किसी बच्चे को Health and Hygiene Committee में भाग लेने में सबसे ज्यादा मज़ा आता, तो इससे हमें कुछ हद तक यह जानने में मदद मिल जाती कि इस बच्चे का रुझान इस क्षेत्र में ज्यादा है। फिर हमारी कोशिश रहती कि कैसे हम उसे इस विषय में और प्रोत्साहन और आगे बढ़ने का मौका दें। पूरा प्रयास यह था कि छात्र-छात्राएँ स्वयं अपनी जिम्मेदारी निर्धारित करें और उसे समयबद्ध तरीके से पूरा भी करें। विद्यालयों में विद्यार्थियों को नैतिक शिक्षा देने का यह सबसे प्रभावी और व्यावहारिक तरीका मुझे समझ में आया। इस तरीके में कहीं

भी उपदेशों के माध्यम से नैतिकता सिखाने का प्रयास नहीं था, वरन् 'Learning by doing' की शिक्षा-पद्धति अपनाई गई। नैतिकता के उपदेशों से बच्चों में पाखण्ड पनपने की सम्भावना अधिक रहती है।

'समीर क्लब' की सदस्य-कक्षाओं में हर माह एक मीटिंग आयोजित की जाती। यह मीटिंग कक्षा-अध्यापकों की निगरानी में होती। इसमें अध्यक्ष और सचिव सभी समितियों के सदस्यों के साथ मिलकर पिछले माह की गतिविधियों की समीक्षा करते और आने वाले माह के लिए कार्यक्रम एवं लक्ष्य तय करते। सचिव इन बैठकों का कार्यक्रम भी बनाता, ताकि सभी महत्वपूर्ण निर्णय स्पष्ट रूप से अंकित हो सकें। इस प्रयोग के क्रियान्वयन का समय रोज़ का वही खाली 30-40 मिनट ही होता। कुछ ही समय में सभी बच्चे और उनके अध्यापक इस मंच की गतिविधियों में इतनी दिलचस्पी से संलग्न हो गए कि हमारे सामने आश्चर्यजनक परिणाम उभर कर आने लगे। कुछ ऐसे ही परिणामों का विश्लेषण इस शृंखला के अगले अंक में किया जाएगा। □□

मैत्री के मेरे प्रयोग-4

अक्सर यह देखा जाता है कि माता-पिता अपने बच्चों को बार-बार याद दिलाते हैं कि उन्हें बहुत मेहनत करके पढ़ाई करनी है, तभी परीक्षा में उनके अच्छे अंक आ सकते हैं। अच्छे अंक लाने पर ही वे अच्छे बच्चे कहलाएँगे। विद्यालय में अध्यापक भी प्राय: यही कहते रहते हैं। इन सब भाषणों से बच्चों पर विपरीत असर ही ज़्यादा पड़ता है। येन केन प्रकारेण परीक्षा में अच्छे अंक लाना इन बच्चों के लिए जीवन में सफलता अर्जित करने के लिए आवश्यक लगने लगता है। यही प्रवृत्ति बाद में कई विद्यार्थियों को परीक्षा में नकल करने तक को प्रेरित करती है। इस प्रकार, परिणाम में एक और अनैतिक नागरिक हमारी शिक्षा-पद्धति द्वारा आज देश को हर वक्त प्रदान किया जा रहा है। मैंने पाया है कि अगर बच्चों को उनकी रुचि के अनुकूल रचनात्मक गतिविधियों में संलग्न किया जाए तो न केवल बच्चों का ध्यान एकाग्र होता है, जो उनके अच्छा विद्यार्थी बनने के लिए आवश्यक है, बल्कि इन गतिविधियों के माध्यम से बच्चों में अच्छे संस्कारों के बीज भी बोए जा सकते हैं और उनके आत्म-विश्वास में भी वृद्धि की जा सकती है। इस पूरे प्रयास में मैंने 'Learning by doing' अर्थात् 'करो और सीखो' विचार का प्रयोग किया, जो बहुत कारगर सिद्ध हुआ है।

हर कक्षा में 'समीर क्लब' के सभी बच्चों पर इन गतिविधियों का बहुत अच्छा प्रभाव पड़ा है। कुछ ऐसे बच्चे उभर कर सामने आने लगे हैं, जिनमें अपनी पढ़ाई के साथ-साथ समाज-सेवा का जोश भी मज़बूती पकड़ने लगा है। एक बच्चे ने बताया कि उसके पिता लगातार धूम्रपान करते हैं, और इस वजह से उसकी माँ और वह बहुत परेशान रहते हैं। उसने मुझसे पूछा कि इस समस्या का क्या समाधान है ? मैंने उससे कहा कि जिस प्रकार तुम 'समीर क्लब' में 'कुछ करके' परिवर्तन लाने की कोशिश कर रहे हो, उसी प्रकार तुम अपने पिता को सद्मार्ग की ओर प्रेरित कर सकते हो। मैंने उसे सोचने पर मजबूर किया और कहा कि इस समस्या का हल उसे स्वयं ही निकालना है। वह बालक कुछ दिन तक अपने पिता को समझाने की कोशिश करता रहा,

परन्तु उनकी सिगरेट पीने की लत समाप्त न हो सकी। रोज़ मैं उससे पूछता था कि क्या प्रगति है, और वह निराश होकर अपनी हार बयान करता था। तब मैंने उससे कहा कि तुमने गाँधी जी के 'सत्याग्रह' के बारे में जरूर पढ़ा होगा। क्या तुम उससे कुछ सबक ले सकते हो ? बालक का दिमाग ठनका और उसे एक तरकीब सूझी।

उसने कहा कि वह मुझे तरकीब तभी बताएगा, जब वह उसे आज़मा-कर देख लेगा। इसके बाद वह बालक मुझे जब भी देखता, उसके चेहरे पर एक हल्की सी मुस्कान होती। उसे देखकर मुझे लगा कि वह धीरे-धीरे अपने लक्ष्य की ओर आखिरकार बढ़ रहा है। इसके पश्चात् मैं अपने और कार्यों में व्यस्त हो गया। करीब एक महीने बाद स्कूल में Parent-Teacher meeting का समय आ गया। वह बालक अपने माता-पिता के साथ मुझसे मिलने अलग से आया। पिता ने प्रणाम किया और भरी हुई आँखों से वे बोले कि मैंने उन्हें एक अजीब सी समस्या में डाल दिया है। धूम्रपान के बगैर उनके लिए जीना मुश्किल है, लेकिन उनके बेटे ने ऐसा एक आन्दोलन घर में छेड़ दिया है कि उससे भी उनके लिए मुश्किल पैदा हो गई है। अब करें तो क्या करें ? मैंने बालक के कन्धे पर हाथ रखते हुए कहा कि निर्णय अब उन्हीं को करना होगा— सिगरेट प्रिय है या बेटा ? अगले दिन उस बालक से मैंने पूछा कि उसने क्या जादू किया कि उसके पिता की यह हालत हो गई है। बालक ने बताया कि जब मैंने गाँधी जी के 'सत्याग्रह' का जिक्र किया, तब उसने घर जाकर अपनी इतिहास की किताब में विस्तार से पढ़ा कि गाँधीजी ने किस प्रकार 'सत्य और आग्रह' की ताकत से अंग्रेजों की शक्ति को नापा। यह पढ़कर उसे लगा कि उसके पिता जिस बुरी आदत में फँसे हैं, उससे उबारने में उसे ऐसा ही कुछ करना पड़ेगा। उसने भी अनशन का मार्ग अपनाया, और घर में ऐलान कर दिया कि जब तक पिताजी इस आदत को छोड़ नहीं देते, वह सुबह का नाश्ता किए बगैर ही स्कूल जाया करेगा। ऐसा करने पर उसकी माँ विचलित हो उठी। उसने इतने साल अपने पति के इस दुर्गुण को किसी तरह सहन किया था, लेकिन अब पानी सिर के ऊपर से निकला जा रहा था। वह अपने बेटे को भूखा नहीं देख सकती थी। बालक और उसकी माँ— दोनों का जोर अब पिता के ऊपर भारी पड़ने लगा था।

बालक के मुख से यह विवरण सुनकर मुझे बहुत खुशी हुई। मुझे लगा कि आखिरकार मेरे प्रयास अब कुछ अच्छे परिणाम लाना शुरू कर रहे हैं। मेरा यह मानना है कि सही शिक्षा वही है, जो हर विद्यार्थी के हृदय में छिपी हुई ईश्वरीय शक्तियों को जगा सके, ताकि न केवल वह बालक सद्मार्ग पर चलने हेतु प्रेरित हो, बल्कि वह अपने से जुड़े आस-पास के लोगों— परिजनों, मित्रों इत्यादि को भी प्रभावित कर सके। गाँधीजी के 'सत्याग्रह' के लिए तीन बातें आवश्यक हैं— सत्य, अहिंसा एवं प्रेम। जो उदाहरण यहाँ प्रस्तुत किया गया है, उसमें ये तीनों बातें विद्यमान हैं। इन तीनों में से एक भी तत्व निकल जाए तो फिर वह 'सत्याग्रह' नहीं कहलाएगा। इसीलिए 'सत्याग्रह' के हर प्रयोग से पहले इन तीनों तत्वों पर गम्भीरता से विचार होना चाहिए। ऐसा न होने पर आज देश में 'सत्याग्रह' के नाम पर निहित स्वार्थों द्वारा 'दुराग्रह' हो रहा है, जिसका परिणाम अनुशासनहीनता के रूप में पूरा देश भुगत रहा है। अनीति के खिलाफ 'सत्याग्रह' एक शक्तिशाली हथियार अवश्य है, लेकिन उसका उपयोग एक नैतिक व्यक्ति ही कर सकता है। जो स्वयं अनैतिक है, वह 'सत्याग्रह' के स्थान पर 'दुराग्रह' ही करेगा।

बच्चों की बातों में बहुत बल होता है और जब यही बातें एवं गतिविधियाँ समाज-सुधार का रूप धारण कर लेती हैं, तो अच्छे परिणाम मिलने की उम्मीदें बढ़ जाती हैं। 'समीर क्लब' विद्यालयों में एक ऐसा मंच प्रदान करते हैं, जो बच्चों को अपनी सामाजिक एवं रचनात्मक क्षमता का प्रयोग करने के लिए प्रोत्साहित करता है। बच्चों की रचनात्मक शक्ति का उपयोग यदि उन्हें 'समीर क्लबों' के माध्यम से नैतिक बनाने में किया जा सके तो निश्चय ही समाज को अहिंसक तरीके से बदला जा सकता है। किसी भी प्रकार की प्रगति के लिए 'trial and error' एक अत्यन्त उपयोगी कार्य-विधि है— खासकर अहिंसक रचनात्मक सामाजिक परिवर्तन के लिए। इस मंच पर हर विद्यार्थी को ऐसा करने का स्वर्णिम अवसर मिलता है। □□

मैत्री के मेरे प्रयोग-5

विद्यालय में 'समीर क्लब' की गतिविधियों के माध्यम से मेरी यह कोशिश थी कि मैं हर बच्चे को अपने आप को बेहतर तरीके से समझने का मौका दिला सकूँ। मेरा यह मानना है कि जब भी एक बच्चा अपने अन्दर छिपी हुई प्रतिभा को समझने लगेगा और इन गुणों की अभिव्यक्ति से उसे जब आनन्द की अनुभूति होने लगेगी, तब उसके लिए पूर्ण रूप से विकसित होने का मार्ग स्वयमेव प्रशस्त हो चलेगा।

'समीर क्लब' की हमारी गतिविधियाँ कुछ इस प्रकार से नियोजित की जाती हैं कि हर सदस्य को वास्तविक जीवन की रोज़मर्रा की परिस्थितियों का अनुभव हो सके, ताकि उसे विद्यालय के सुरक्षित वातावरण में उनसे जूझने का मौका मिले और उसमें यह क्षमता पैदा हो कि कैसे जटिल से जटिल स्थिति का सामना किया जा सकता है। मैंने यह पाया है कि अनेक बच्चों में सेवा की भावना विद्यमान है, लेकिन सही मंच न मिलने पर धीरे-धीरे यह नष्ट होती जाती है और जीवन की परिस्थितियाँ उन्हें मतलबी बनने पर मज़बूर कर देती हैं। मेरे कुछ विद्यार्थी, जो 'समीर क्लब' के सदस्य रहे थे, आज अत्यन्त सेवा के भाव से किसी न किसी रूप में स्वैच्छिक सेवा-कार्य कर रहे हैं। इनमें से 'अम्बुज' नामक बालक का ध्यान मुझे खास तौर पर आता है। वह बिहार का रहने वाला है। पहली बार नवीं कक्षा में वह मेरे सम्पर्क में आया था। वह अपनी छोटी बहिन के साथ स्कूल के पास एक मोहल्ले में किराये पर रहता था। शुरू से ही अम्बुज में दीन, गरीब बच्चों के प्रति कुछ अच्छा करने की तमन्ना थी। मानव भारती में 'समीर क्लब' के विकास में उसका बड़ा योगदान रहा है। जब यह क्लब शुरू हुआ, तब अम्बुज उसका प्रथम अध्यक्ष बना। क्लब की अनेक गतिविधियों को संचालित करने में उसका बहुमूल्य योगदान रहता था। अम्बुज ने न केवल विद्यालय प्रांगण में, अपितु अपने मोहल्ले के अनेक ऐसे बच्चों का मार्गदर्शन भी किया, जो कि काफी गरीब, शोषित समाज के थे। मैं स्वयं उनकी मासिक बैठकों में जाया करता था और उन सभी बच्चों के साथ समय बिताया करता था तथा अम्बुज को प्रोत्साहित भी करता रहता था कि इस दैवी कार्य को और आगे कैसे बढ़ाए।

इन बच्चों में कुछ के माता-पिता दफ्तरों में नौकर अथवा चपरासी थे, कुछ के अभिभावक सफाई कर्मचारी थे, कुछ के होटल इत्यादि में बैरे का काम करते थे तथा कुछ के वाहन चालक थे। इन बच्चों में अनेक प्रतिभाशाली भी थे— खेल-कूद में, नृत्य कला या संगीत में एवं ललित कला आदि के क्षेत्र में। अम्बुज की यह कोशिश रहती थी कि कैसे इन बच्चों की छिपी हुई प्रतिभा को सामने लाया जाए, ताकि उन्हें प्रोत्साहन मिले और उनका मनोबल ऊँचा हो। जो बच्चे पास-पड़ोस में एवं अपने घरों तथा स्कूलों में सेवा-भाव से कुछ न कुछ योगदान देते थे, उन्हें माह के आखिर में एक छोटा सा तोहफा दिया जाता था, जो उनकी प्रतिभा के अनुकूल होता था। कुछ समय बाद अम्बुज ने पाया कि ये सभी बच्चे पढ़ाई में दिलचस्पी लेने लगे थे और कुछ ने तो अपनी-अपनी कक्षाओं में प्रथम श्रेणी के परिणाम भी पाए। इन बच्चों के माता-पिता की यह चाहत थी कि कम से कम उनके बच्चे उनसे ज़्यादा उन्नति करें और, हो सके तो, जीवन में अच्छा लक्ष्य प्राप्त कर सकें। इस पूरे अभियान के दौरान अम्बुज मुझसे बातें करता रहता था और बच्चों के विकास के बारे में बड़े उल्लास के साथ मुझे बताता था।

अम्बुज के इस स्वैच्छिक प्रयास को देखकर मुझे भी समझ में आया कि 'समीर क्लब' के माध्यम से हमें बच्चों को इस प्रकार सुसंस्कारित करना चाहिए कि जब वह बड़े होकर अपनी-अपनी ज़िन्दगी जीने लगें तो उनके दिल और दिमाग में यह बात जरूर हो कि समाज के प्रति भी उनका कुछ दायित्व बनता है। इस दायित्व को निभाने के लिए उन्हें दुनिया से भागकर संन्यास लेने की जरूरत नहीं है, बल्कि अपने जीवन में भौतिकता एवं अध्यात्म के बीच सन्तुलन बनाने की आवश्यकता है। तब वह सीख सकेंगे अपने अनुभव के माध्यम से कि अगर भोग भी त्याग की भावना से किया जाए तो इस संसार में सभी के लिए बहुत कुछ है। 'समीर क्लब' के मेरे प्रयोग ने और भी कई बच्चों को बड़ी गहराई तक छुआ, लेकिन मैंने केवल अम्बुज का ही उदाहरण इसलिए प्रस्तुत किया, क्योंकि वह सबसे उल्लेखनीय रहा है। विद्यालय में जिस किसी ने भी इस क्लब की गतिविधियों में भाग लिया, उसे अपने भविष्य का रास्ता स्वयमेव प्रशस्त होता हुआ नज़र आया, और यह महसूस हुआ कि जीवन में खुशी के लिए सिर्फ नाम एवं धन काफी नहीं है, बल्कि अपने छिपे हुए हुनर को उभार कर कुछ

अच्छा करने की तमन्ना, केवल अपने लिए नहीं, अपितु अन्य व्यक्तियों के लिए भी, एक दैवी कार्य है, जिसको क्रियान्वित करना हमारा कर्तव्य बनता है। अम्बुज ने इस दायित्व को बखूबी निभाया तथा सबके सामने एक उदाहरण प्रस्तुत किया है। मेरी ईश्वर से सदा यह प्रार्थना है, और रहेगी, कि जिस किसी पर भी अम्बुज की भली नज़र पड़े, उसे ईश्वर संरक्षण दे। अम्बुज को तो ईश्वर का संरक्षण मिलता रहेगा— ऐसा मेरा विश्वास है।

अम्बुज के उदाहरण से मुझे मैत्री के अपने प्रयोगों को चलाने के लिए एक और दिशा मिली। 'समीर क्लब' के अपने प्रयोग में मुख्यतः निर्देशक की भूमिका शिक्षकों की ही रहती है, अभिभावक उसी हद तक इसमें सम्मिलित रहते हैं, जितना शिक्षक के लिए उनसे पैरेण्ट-टीचर एसोसिएशन की सामयिक बैठकों में सम्भव बन पड़ता है। भारत इलेक्ट्रॉनिक्स लिमिटेड की चन्द्र नगर, गाजियाबाद में स्थित बी.ई.एल. ऑफिसर्स कॉलोनी के अन्दर मैंने 'मैत्री क्लब' नाम से एक प्रयोग वर्ष 2002 में आरम्भ किया, जिसमें मेरी धर्मपत्नी और बेटा भी सम्मिलित हुए। कॉलोनी के ऐसे अभिभावक, जो अपने बच्चों की देखरेख में सतर्क थे, उनको भी इस प्रयोग में सम्मिलित किया गया। 'समीर क्लब' की ही संकल्पना इस 'मैत्री क्लब' में भी समायोजित की गई, फर्क सिर्फ इतना था कि 'समीर क्लब' में शिक्षकों के स्थान पर 'मैत्री क्लब' में निर्देशक की भूमिका अभिभावकों पर डाली गई। यह सोचना तो आसान था, लेकिन इसे क्रियान्वित करने में मुझे पूरा एक वर्ष लग गया। अपने इस प्रयोग के बारे में मैं अगले अंक में विस्तृत विवरण दूँगा। इस अनुभव के आधार पर एक 'मैत्री क्लब' मैनुअल भी तैयार करने की मैं कोशिश कर रहा हूँ। □□

मैत्री के मेरे प्रयोग-6

स्कूल स्तर के 'समीर क्लब' की संकल्पना को स्वरूप देने में मुझे तीन-चार साल लग गए और इस बीच यह भी प्रयास किया गया कि दिल्ली और लखनऊ के कुछ स्कूलों में इसे शुरू किया जाए। इस उद्देश्य से दिल्ली और लखनऊ में कार्यशालाएँ आयोजित की गईं, जिनमें कई प्रमुख स्थानीय विद्यालयों के प्राचार्य और प्रबन्धकगण आमंत्रित किए गए थे। लेकिन इस प्रयास में कोई खास सफलता नहीं मिली, यद्यपि सभी ने 'समीर क्लब' की संकल्पना को सराहा था। इस प्रकार के प्रयास में सफलता के लिए यह पाया गया कि कम से कम एक शिक्षक हर स्कूल में ऐसा हो, जो 'समीर क्लब' की गतिविधियों को चलाता रहे और इस प्रयास में उसे अन्य शिक्षकों और प्रधानाचार्य के साथ-साथ स्कूल प्रबन्धक का भी सहयोग मिलता रहे। आज की परिस्थिति में यह सुखद संयोग नहीं के बराबर दिखाई पड़ा, और निराश होने के बजाय मुझे अम्बुज के अनुभव के आधार पर पास-पड़ोस के 'मैत्री क्लब' की संकल्पना पर काम करने का मन सन् 2002 में जुलाई-अगस्त के दौरान हुआ। भारत इलेक्ट्रॉनिक्स लिमिटेड (BEL), चन्द्र नगर, गाजियाबाद के BEL Officer's Club (BOC) में 'मैत्री क्लब' के प्रयोग को आरम्भ करने का सुनहरा अवसर मुझे इसी समय मिला। 'मैत्री क्लब' की संकल्पना लगभग वही थी, जो 'समीर क्लब' की थी, फर्क सिर्फ यह था कि 'समीर क्लब' की व्यवस्था में शिक्षकों के स्थान पर उनकी भूमिका में अभिभावकों को 'मैत्री क्लब' में उतारा गया। वैसे भी चौबीस घण्टों में से स्कूल में तो बच्चे केवल 6-7 घण्टे ही रहते हैं, शेष समय तो वे अभिभावकों के ही संरक्षण में रहते हैं, जिस अवधि में आज लगभग सभी अभिभावक कम-ज्यादा शिक्षक की भी भूमिका गृह-कार्य (Home Work) को सम्पन्न कराने में निभाते हैं। आज स्थान-स्थान पर आवासीय कॉलोनी स्थापित हैं, जहाँ सामुदायिक निर्णय की कोई न कोई व्यवस्था विद्यमान रहती है। क्यों नहीं 'मैत्री क्लब' की संकल्पना को उनसे जोड़ने का अभियान चलाया जाय— इस भावना से मैंने अपना काम आरम्भ किया।

सभी अभिभावक अपने बच्चों को अच्छी से अच्छी शिक्षा देने के लिए आज सक्रिय रहते हैं। कुछ इसके लिए Tuition लगाना आवश्यक समझने लगे

हैं, लेकिन ट्यूशन की बढ़ती हुई फीस को देखते हुए कई अभिभावक इसके स्थान पर स्वयं अपने बच्चों पर मेहनत करते हैं। मुझे BOC में ऐसे ही अभिभावकों की आरम्भ में खोज थी, और कुछ खोजबीन के बाद मुझे ऐसे अभिभावक मिलने लगे। मैंने ऐसे अभिभावकों को न केवल अपने बच्चों के लिए ही, वरन् BEL कॉलोनी के अन्य बच्चों के लिए भी अपनी-अपनी प्रतिभा का लाभ देने की बात रखी, जो धीरे-धीरे उनके गले से उतरनी आरम्भ हुई। तर्क यह था कि सभी अभिभावक यह भी चाहते हैं कि उनके बच्चे कुसंग में न पड़ें, और कॉलोनी के हर उम्र के बच्चों को 'मैत्री क्लब' के माध्यम से साथ-साथ मिलकर खेल-कूद, कला, क्विज आदि गतिविधियों में भाग लेने के लिए प्रेरित करने में पास-पड़ोस में मैत्री-भाव का विकास भी इन अभिभावकों को सम्भव दिखाई दिया। प्रारम्भ में हर रविवार को और लगभग 6 महीने बाद हर माह के पहले एवं तीसरे रविवार को सभी बच्चे BOC के परिसर में प्रातः 10 बजे एकत्र होने लगे और बारी-बारी से दो-तीन अभिभावक अपना समय बच्चों के साथ बिताने के लिए देने लगे और अपनी-अपनी प्रतिभा के अनुरूप बच्चों की सामूहिक गतिविधियाँ आयोजित करने लगे। अभिभावक अपनी-अपनी प्रतिभा के अनुरूप, आने वाले पहले अथवा तीसरे रविवार से पहले BOC के नोटिस बोर्ड पर बच्चों की प्रस्तावित गतिविधि की सूचना दे देते, ताकि सभी बच्चे आगामी रविवार को तैयार हो कर आएँ।

इस प्रकार, पास-पड़ोस के हर बच्चे को विभिन्न प्रकार की शिक्षणेतर गतिविधियों में भाग लेने का अवसर मिलने लगा और बच्चों के साथ-साथ और अधिक संख्या में उनके अभिभावक अपना-अपना समय और अपनी-अपनी प्रतिभा सभी बच्चों में बाँटने को तत्पर होने लगे। इस क्रम में यह देखा गया कि कुछ बच्चे कुछ खास करने में रुचि दिखाने लग जाते हैं, इसी दिशा में उन्हें आगे का प्रशिक्षण दिया जाय तो उनकी प्रतिभा फूट पड़ेगी। उनके अभिभावकों को तदनुसार समय-समय पर सूचित किया जाने लगा और कई अभिभावकों ने अपने बच्चों के लिए इस प्रकार निर्धारित उनकी रुचि को प्रोत्साहित करना आरम्भ भी कर दिया। इस प्रक्रिया से देखा गया कि कक्षा-9 तक आते-आते हर बच्चा यह स्वयं बताने लग जाता है कि उसे भविष्य में किस दिशा में आगे बढ़ना है, और उसे केवल अपने अभिभावकों की महत्वाकांक्षाओं और अपेक्षाओं की

आधार पर ही अपने भविष्य को बनाने की मज़बूरी नहीं रह जाती है। इस पूरी प्रक्रिया में अभिभावकों और उनके बच्चों के बीच बढ़ता हुआ संवाद बच्चों के विकास के लिए तो रामबाण का काम करता ही है, उनके सामान्य पठन-पाठन के स्कूल के कार्य में भी प्रगति दिखाई पड़ी है। अभिभावकों में अपने बच्चों के प्रति चिन्ता के स्थान पर सहयोग और प्रेम तथा मैत्री के भाव के विकास से पारिवारिक कलह भी शान्त होते दिखाई पड़े। पास-पड़ोस के सद्भाव में वृद्धि से मानों BOC में 'धरती पर स्वर्ग का अवतरण' ही दिखाई देने लगा। पण्डित श्रीराम शर्मा आचार्य, मेरे परम पूज्य गुरुदेव, ने तो यह बहुत पहले कह दिया था कि "सुखी परिवार ही धरती पर स्वर्ग है", और BEL कॉलोनी में अब वास्तव में सुखी परिवार नज़र आने लगे हैं।

'मैत्री क्लब' के संचालन में अभिभावकों के सहयोग को व्यवस्थित करने एवं उसे दिशा देने के लिए हर तीन माह में उनकी एक कार्यशाला आयोजित करने का काम मैंने सन् 2003 के आरम्भ में शुरू किया। इसमें हर बच्चे की रुचि, उसकी प्रगति और 'मैत्री क्लब' के भविष्य के कार्यक्रमों पर विशद् चर्चा की जाती है। इन कार्यशालाओं में हर अभिभावक को 'मैत्री क्लब' के संचालन की ज़िम्मेदारी उनकी रुचि एवं समयदान के अनुसार अगले तीन माह के लिए निर्धारित की जाने लगी। बच्चों के भविष्य की सम्भावनाओं पर भी इन कार्यशालाओं में चर्चा की जाती है। मज़े की बात यह है कि इस प्रकार की कार्यशाला के संचालन की ज़िम्मेदारी बच्चों को सौंपी जाती है। कौन-कौन बच्चे कार्यशाला में अभिभावकों के स्वागत का कार्य करेंगे, उन्हें उनके आसन तक पहुँचाएँगे, कौन-कौन बच्चे पानी पिलाएँगे आदि का निर्धारण पहले से ही कर दिया जाता है। कार्यशाला के संचालन में Master of ceremonies का दायित्व किसी बड़े बच्चे को दिया जाता है। इस सब में बच्चों को बहुत मज़ा आता है और उनके अभिभावक भी अचम्भा करते हैं कि उनका बच्चा कैसी कुशलता से, सौंपी गई ज़िम्मेदारी निभा रहा है। 'मैत्री क्लब' के बच्चों को बारी-बारी से अध्यक्ष, सचिव, कोषाध्यक्ष आदि पदों की ज़िम्मेदारी बच्चों की परस्पर सम्मति से ही दी जाती है और इनके माध्यम से ही हर माह के पहले और तीसरे रविवार को बच्चों के कार्यक्रम आयोजित होते हैं।

आज की भाग-दौड़ की जिन्दगी में बच्चों की सबसे बड़ी त्रासदायक व्यथा उनके अभिभावकों के पास उनके लिए फुर्सत न होना साबित हो रही है। बच्चे अपने अभिभावकों के प्यार के लिए तड़पने लगे हैं और जब वह उन्हें नहीं मिलता है, तब वे विभिन्न प्रकार की मानसिक विकृतियों के शिकार होने लगते हैं। तिस पर क्लास की परीक्षा में अव्वल आने का अभिभावकों का दबाव उन पर भारी साबित होने लगता है। अभिभावकों की अपेक्षाओं में खरे उतरने को बच्चे अपने लिए एक अनिवार्यता मान लेते हैं, जो उनके लिए कई परिस्थितियों में त्रासदायक सिद्ध होने लगता है। Generation Gap की आज बहुत चर्चा है, लेकिन इस खाई को वास्तव में पाटने के लिए मुझे कहीं कुछ होता हुआ नज़र नहीं आया है। क्या प्रत्येक आवासीय कॉलोनी में 'मैत्री क्लब' का आयोजन करना इसका समाधान हो सकता है ? BOC में चल रहे 'मैत्री क्लब' ने यहाँ के बच्चों के लिंए यह सब बदल दिया है और इस प्रश्न का संतोषजनक उत्तर भी दे दिया प्रतीत होता है। यहाँ अभिभावक अपने बच्चों के साथ खेलने लग गए हैं और अपने ही बच्चों की नज़रों में उनकी हैसियत बढ़ने लग गई है। बच्चों के लिए उनके अभिभावक एक उदाहरण हुआ करते हैं, और BOC में देखने में आया है कि अभिभावकों के व्यवहार में आमूलचूल परिवर्तन दिखाई देने लगा है, जिससे सभी की प्रसन्नता में रोज़ ही इज़ाफा होता हुआ दिखाई पड़ता है। अपने ही बच्चों के प्रति नहीं, वरन् BOC के सभी बच्चों के प्रति यहाँ के अभिभावकों में Larger Family का भाव उमड़ते हुए देखा जा सकता है। बच्चे भी BEL Colony के सभी घरों को अपने ही घर जैसा समझने लगे हैं। यहाँ के बच्चों में आपस में उम्र और लिंग-भेद को पार कर दोस्ताना भाव अभूतपूर्व रूप से दिखाई देने लगा है, जिससे 'मैत्री क्लब' की उपयोगिता को आज BOC में मुक्त कण्ठ से सराहा जाने लगा है। 'मैत्री क्लब' के इस प्रयोग के विभिन्न संस्करणों के विकास की दिशा में मैं आजकल कई स्थानों पर प्रयोग कर रहा हूँ, जिसमें समय लगने की सम्भावना है। **'मैत्री के मेरे प्रयोग'** शीर्षक से मेरी यह लेखमाला फिलहाल यहीं समाप्त होती है और मैं 'ऋचा ऋतम्भरा' के प्रिय पाठकों से अगली लेखमाला तैयार होने तक विदा लेना चाहूँगा। पत्रिका के पाठकों की प्रतिक्रियाओं से मुझे अपने मिशन में भरपूर प्रोत्साहन मिला है, जिसके लिए मैं उनका हृदय से आभारी हूँ।